हमज़ाद

जिंदर

हमज़ाद

एक फर्मे ने ही मेरी बस करवा दी थी। मूल कॉपी इतनी खराब थी कि दो पृष्ठ पढ़कर मैंने मन बना लिया था कि इसे पढ़ूँ ही न। लौटा दूँ। कठिन काम करने को मैं ही रह

https://www.hindiadda.com/hamzad/

गया! यह दूसरी रीडिंग थी। पहली रीडिंग में किसी ने अशुद्धियाँ निकालने की कोशिश ही नहीं की थी। या हो सकता है, उससे मूल पढ़ा ही न गया हो। फिर तो यही हल बचता है - एक पैरा पढ़ लो, तीन छोड़ दो। पर मैं पढ़ता गया, यह सोचकर कि अब इससे बचा नहीं जा सकता। यदि आज वापस भेज दिया और कल को यही फर्मा दुबारा आ गया तो फिर क्या होगा? मुझे कई बार यह लालच हो जाता है कि अगली रीडिंग मेरे पास आ गई तो मूल कॉपी देखने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। मैं आधे घंटे में फर्मा पढ़ डालता हूँ।

मैं बुरी तरह थक गया था। खीझ गया था जैसे प्रायः ऐसे वक्त सतीश की बात याद आती है, अब फिर आने लगी थी, "हमारी भी कोई जून है। कभी जी भरकर सोकर नहीं देखा। सारा टब्बर मौज से टेलीविज़न देख रहा होता है या घोड़े बेचकर सो रहा होता है, हम मक्खी पर मक्खी मार रहे होते हैं।" उसकी यह बात मुझे हमेशा ही ठीक लगी थी। लेकिन मुझसे ऊबा नहीं जाता। आज भी ऊबा नहीं था। अभी दो फर्मे पड़े थे। इन्हें तड़के उठकर पढ़ लूँगा, यह सोच मैं टेबल लैंप बुझाकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। पीछे की ओर झुककर कमर सीधी की। बाँहें ऊपर उठाकर भरपूर उबासी ली। मेरा ध्यान विलाबल के कमरे से आती स्टीरियो की आवाज़ की ओर चला गया। मैं मेज़ की तरफ हुआ। उलटी पड़ी घड़ी को उठाया। सुइयों पर नज़रें टिका दीं। बारह बजकर पाँच मिनट हो गए। अभी तक विलाबल क्यों नहीं सोया? क्या मालूम वह सो रहा हो? वह स्टीरियो लगा लेता और रिवर्स कैसेट चलती रहती। जाग रहा होता तो वह सिगरेट बुझने न देता। यह जानते हुए भी कि उसकी मम्मी को इससे हद से ज्यादा नफ़रत है।

उसे जल्दी नींद नहीं आती।

नींद तो मुझे भी नहीं आती। मेरे कमरे की जलती ट्यूब देखकर बाथरूम से लौटते हुए वह पूछता, "डैडी जी, टैबलेट लेनी तो नहीं भूल गए।" प्रत्युत्तर में मुझे क्या कहना था। ट्यूब बंद कर देता। मुझे फिर भी नींद नहीं आती। मेरा ध्यान बार बार उसके कमरे की तरफ़ जाता। मैं चाहता कि ज्योति जाकर उसे समझाए, "बेटा, आधी रात बीत चली। अब तू सो जा। चिंता करने को हम बैठे हैं।" पर मुझसे कहा न जाता। मैं जानता हूँ कि वह ज्योति का आज्ञाकारी पुत्र है, मेरा नहीं।

जब तक उसके कमरे की बत्ती न बुझती, मुझे बुरे-बुरे ख़याल तंग करते रहते। मेरी नींद उसकी नींद से जुड़ गई थी।

ज्योति के निरंतर ज़ोर डालने पर मैं डा. बवेजा के पास गया था। डॉक्टर ने मुझे अपनी केस हिस्ट्री बताने को कहा था। मैंने बताया था - दफ़्तर में मैं डिस्पेचर लगा हुआ हूँ।

चिट्ठियों पर नंबर लगाते लगाते मेरी उँगलियों के पोर दुखने लगते हैं। सुपरिंटेंडेंट को विनती की कि लिफाफा बंद करने के लिए एक हैल्पर दे दो। पर उसके कान पर जूँ नहीं रेंगी। आगे गुस्से में बोला, "तू कोई नया डिस्पेचर लगा है... पता नहीं क्यों, लोगों का काम करने को मन नहीं करता। तुझे जी.पी.एफ. विभाग में न लगा दूँ। सारा दिन जमा-घटा करता रहना।" मैंने वहाँ से खिसकने की की। इसकी खोपड़ी उल्टी दिशा में चलने को हर समय तैयार रहती है। सरकारी काम जो हुआ। कौन किसकी परवाह करता है। मेरे जैसे की कौन सुनता है। अगले महीने हैल्परों की इंटरव्यू होनी थी। ढेर सारी चिट्ठियाँ भेजनी पड़नी थीं। हुक्म हुआ था, "डाक वाली मेज़ निहंगों के बाटे की तरह चटमचट होनी चाहिए।" मैंने खोपे चढ़े झोटे की तरह सिर फेंक कर नंबर पर नंबर लगाने शुरू कर दिए। इन्हीं दिनों में प्रूफों का भी ज़ोर चल रहा था। हर रोज़ पाँच-छह फर्मों के संग एक चिट भी जाती, "सवेर को पढ़े हुए चाहिए।" मुझे आराम न मिलता। मन में यह ख़याल आता कि क्यों न आधी चिट्ठियाँ फाड़कर फेंक दूँ। जिन्हें रखा जाना था, उनकी सेलेक्शन तो पहले ही हो चुकी थी। बाकी तो फारमेल्टी पूरी करनी थी। मैं अफ़सरों को ज़ोरदार गालियाँ बकता। गालियाँ बकने से मेरे सिर को आराम मिलता। डॉक्टर मेरे सच बोलने पर हाथ पर हाथ मारकर हँसा। मैंने उसका साथ न दिया। डॉक्टर ने कहा, "चलो, आगे बोलो।" मैंने लगातार दो घंटे मन की भड़ास निकाली। लेकिन मुझसे विलाबल के बारे में एक भी बात न की गई। फिर डॉक्टर ने घंटी पर उँगली रखी। चपरासी को कहा कि दो कप चाय बनाकर दे जाए। मीठा कम और पत्ती तेज़। कुर्सी मेरे सामने घुमाकर बोला, "अब जो जो मैं पूछूँ, उसका जवाब दो। तुम कौन सी अख़बार पढ़ते हो?"

"जो भी दफ्तर में हाथ लग जाए।"

"कौन सी ख़बरें ज्यादा पढ़ते हो?"

"नौजवानों की आत्महत्याओं की।"

"क्यों?"

मुझे उपयुक्त जवाब नहीं सूझा।

"कहीं तुम भी आत्महत्या करने की तो नहीं सोचे बैठे?"

"नहीं, ऐसा विचार मेरे मन में कभी नहीं आया।"

"ये घटनाएँ पढ़कर तुम्हें कोई सुकून मिलता है?"

"नहीं।"

"फिर कैसा महसूस करते हो?"

"मैं चिंतित हो जाता हूँ।"

"फिल्मी एक्ट्रेस की रंगीन कहानियाँ पढ़ा करो। चुटकुलों वाले कालम भी।" डॉक्टर ने मुझे लतीफ़े सुनाए। लुच्चे-नंगे खूब हँसाने वाले। फिर उसने मुझे सुनाने के लिए भी कहा। मैं चुपचाप बैठा रहा। वह बोला, "तुम्हारी उम्र कोई ज्यादा नहीं। ज़िंदगी को रंगीन बनाओ। लो, एक और सुनो।" उसने मुझे इतना हँसाया कि पेट दुखने लग पड़ा। एक हफ़्ता वह ऐसा ही कराता रहा। मैं नार्मल होता गया। पर महीने भर बाद मुझे सोते समय टैबलेट की फिर ज़रूरत पड़नी आरंभ हो गई।

लगता था कि आज फिर टैबलेट लेकर सोना पड़ेगा।

विलाबल ज़रूर जाग रहा होगा, मेरे ऊपर यह विचार भारी होने लगा।

मैं उठा। लोई लपेटी। बरामदे में आकर खड़ा हो गया। उदास गीतों की कैसेट लगी हुई थी। मेरा इतना साहस नहीं हुआ कि मैं उसके कमरे में चला जाऊँ। पैर बाथरूम की ओर बढ़े। ध्यान उसके कमरे की ओर रहा। मुझसे उसकी हालत देखी नहीं जाती। इस उम्र में उसका इतना जागना भयानक लगता। मैं पुनः बरामदे में आकर खड़ा हो गया। एक अन्य ख़याल आया कि क्यों न मेन-स्विच ही बंद कर दूँ। अगर वह जाग रहा होगा तो ज़रूर बोलेगा। नहीं तो ठीकठाक। परंतु यदि वह चीख़ पड़ा तो। सोचते ही मुझे कँपकँपी छूट गई।

मुझसे उसकी चीख़ का सामना नहीं होता।

हो सकता है, उससे भी मेरी चीख़ का सामना न हो पाता हो।

इस चीख़ में मेरा अपना कसूर भी है। मैंने इस बात से कभी इनकार नहीं किया। इनकार करूँ भी तो कैसे?

अब उसने बैंक से कर्ज़ा लेकर कॉफी हाउस खोलने के लिए दुकान तलाश ली है। इस विषय में न तो उसने अपनी मम्मी से कोई सलाह की, न ही मुझसे पूछा। मानो इसकी आवश्यकता ही न हो। मुझे सिर्फ़ इतना भर पता था कि वह मेरे होते ही घर से चला जाता है। मेरे आने के बाद खा-पीकर लौटता है। अपने कमरे में जा घुसता है। वह इतना आहिस्ता से गेट की कुंडी खोलता है कि मुझे पता ही न चलता। ज्योति उसकी

प्रतीक्षा में खिड़की में बैठी रहती है। कब वो आए और कब वह उसे रोटी खिलाकर मुक्त हो। अक्सर मैं उसे घूरता हूँ, "वो कौन सा दूध पीता बच्चा है। अगर भूख होगी तो आवाज़ लगा लेगा या रसोई में जाकर खा लेगा।" प्रत्युत्तर में वह कुछ न कहती। मुझे लगता कि वह अपनी चुप में भी यह कह रही होती है, "आख़िर माँ हूँ।" वह उसे रसोई में आवाज़ लगाती। वह कहता, "मम्मी जी, तुम यहाँ आ जाओ।" वह उसे पुनः आवाज़ लगाती, परंतु वह कमरे से बाहर न आता। मुझे विलाबल के साथ साथ ज्योति पर भी खीझ आती। इसके लाड़-प्यार ने इसे बिगाड़ दिया था। लापरवाह कर दिया था।

फिर मुझे यह भी झूठ लगता। वह तो बहुत मेहनत कर रहा था। उसने मेरे आसरे कोई काम नहीं छोड़ा। मुझे पता ही तब चलता जब वह मुझे सूचित करता। वह और क्या कर सकता था? मैं चाहता था कि वह मेरे पास बैठे। लेकिन मैं जल्दी ही डर जाता। वह तुरंत कह देता, "आप तो प्रूफ़ पढ़े जाओ।" उसे मेरे इस काम से बेइंतहा चिढ़ थी। नफ़रत थी। यह जानते हुए भी कि मैं यह अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि घर की बार बार खड़ी हो जाती गाड़ी को धक्का देने के लिए ही दिन-रात एक कर रहा था। मैंने बातों-बातों में उसे कई बार समझाया, "तू मेरी स्थिति को समझने की कोशिश क्यों नहीं करता? तुझे मालूम है, मैंने हाउस बिल्डिंग एडवांस लिया हुआ है। आधी तनख्वाह तो इसकी किस्त में कट जाती है। अभी दो साल और कठिन गुजरेंगे। मकान बनवाना भी ज़रूरी था। यह तेरे ही काम आएगा...।" वह लापरवाही से कह देता, "यह तो समय ही बताएगा।"

विलाबल ने मेरे सामने कार्ड फैलाकर कहा, "दफ्तर से छुट्टी ले लो।"

कार्ड पर छपा मेरा अपना नाम ही मेरे लिए प्रश्न चिह्न बन गया था।

ज्योति से रहा न गया, "बेटा, तूने तो कमाल कर दिया। न सलाह...।"

"मम्मी जी, इसमें सलाह लेने वाली कौन सी बात आ घुसी। यह मेरा अपना फ़ैसला है।" ज्योति की बात को बीच में टोकते ही वह तेज़ी से बोला।

अब वह अपने फ़ैसले स्वयं करता था। उसे किसी की दख़लअंदाजी अच्छी नहीं लगती। इसी कारण मैंने एक और फर्मा उठा लिया। मुझसे उसका सामना नहीं होता या मैं स्वयं ही उसे देखना नहीं चाहता।

"आओगे न...?" उसने मेरी चुप से उकता कर पूछा।

"क्यों नहीं... हम नही आएँगे तो और कौन आएगा।" मुझसे पहले ही ज्योति ने कह दिया और पूछा, "और कौन-कौन आ रहा है?"

उसके जाते ही मुझे लगा था कि अब मैं एक बोझ से मुक्त हो गया हूँ। मेरी आँखों के सामने मेरे अपने कुलीग राम प्रकाश का लड़का निंदर आ गया। वह कितना समझदार निकला। पहले उसने बजाजी की दुकान पर सेल्समैनी की। फिर माल उधार उठाकर अपनी दुकान डाल ली। राम प्रकाश को प्रिमिच्योर रिटायरमेंट दिलवाकर दुकान के काउंटर पर बिठा दिया। हो सकता है कि अब विलाबल भी कामयाब हो जाए। जब से उसने बर्तनों की दुकान उठाई थी, मैंने उसे बेचैन ही देखा था। शायद पहली हार ने ही उसकी कमर तोड़ दी थी। वह बौखला उठा था। मैंने ज्योति को समझाया था कि वह उसकी तरफ़ विशेष ध्यान दे। जब भी वह पैसे माँगता है, ज़रूर दे। उसे सोए हुए को न उठाना। उसे पास बिठाकर रोटी खिलाना। इन दिनों में मैं उसे अपने करीब बिठाता। उसके साथ सलाह-मशवरा करता। एक दिन मैंने उसे यह भी कहा था कि वह अपना पासपोर्ट बनवा ले और किसी अरब देश में चला जाए। उसने मेरी इस तज़वीज को रद्द करते हुए कहा था, "जितने पैसे बाहर जाने के लिए खर्च करने हैं, उनसे तो यहाँ भी कोई छोटा-मोटा काम शुरू किया जा सकता है।"

"अच्छा, तूने किसी काम के बारे में सोचा?"

"काम तो बहुत हैं।"

"फिर क्या सोचता है।"

"कुछ भी नहीं।"

"पैसों की चिंता मेरे लिए छोड़ दे।"

"आपको पता है कि बर्तनों की दुकान में तीस हजार का घाटा पड़ा।" इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ। फिर तो वह मुझसे बचकर रहने लगा।

उसने एक प्रैस में इश्तहारबाजी का काम किया। मार्किट कमेटी में ऑक्शन रिकार्डर लगा। पर उसका मन किसी काम में नहीं लगा। वह तो अपना काम शुरू करना चाहता था।

जिस दिन से उसने कॉफी हाउस खोला था, तब से वह खुश-खुश रहने लगा था। अपनी मम्मी के पास रसोई में बैठता। उसे बताता, "समझ लो, मेरा काम चल ही पड़ा। दो

लड़के रखे। पाँच पाँच सौ में। दो हजार किराये का हो गया। बाकी पाँच-सात सौ बिजली का खर्चा। मैंने बहुत कुछ सोच समझकर यह दुकान खोजी थी। इसे तीन तरफ से सड़क लगती है। लोग शाम के वक्त इधर से ही गुजरते हैं। पिछले महीने मुझे तीन हजार बचा था। यह तो शुरुआत है। नाना जी ने मुझे समझाया था कि पहले साल दुकान तुम्हें खाती है। फिर तुम दुकान को खाते हो। मैं काम को और बढ़ाने की सोच रहा हूँ। ड्राई फ्रूट रखा जा सकता है। कहीं से पचास हजार का जुगाड़ करता हूँ। किसी से ब्याज पर पैसे पकड़े जा सकते हैं।" बीच बीच में वह चिंतित हो जाता। इस बात से डरता कि कहीं कोई दूसरा कॉफी हाउस न खुल जाए। जैसे उस समय दो बर्तनों की दुकानें खुल गई थीं। "लगता तो नहीं... पर फिर भी क्या पता चलता है... मैं तुम्हें स्टैंड होकर दिखाऊँगा।"

वह मेरे कमरे में भी चक्कर लगा जाता। कहता, "आप समय से सो जाया करो।"

उसके कमरे की ट्यब मुश्किल से आधा घंटा जलती।

उन्हीं दिनों मुझे भरपूर नींद आने लगी थी।

पर यह सिर्फ़ कुछ दिनों का ही खेल रहा था।

जब से उसने बर्तनों की दुकान उठाई थी, पहली बार मुझसे पैसे माँगे थे, "डैडी जी, मुझे दो हज़ार मिल सकता है? मुझे बीस तारीख़ तक बैंक की किस्त देनी है।"

"कल ले लेना।" मैंने कहा था। वह उन्हीं पैरों से अपने कमरे में लौट गया था।

वैसे भी वह मेरे संग एक-आध ही बात करता और अपने कमरे में चला जाता। हमारी बात 'हाँ' या 'न' में ही समाप्त हो जाती। दरअसल, मेरे पास उसके साथ सलाह करने का समय ही नहीं होता था। वह किसी काम में मेरे से सलाह लेता तो मैं झट कह देता, "अपनी मम्मी से पूछ ले"। यदि वह पैसे माँगता तो भी मेरा ऐसा ही जवाब होता। दफ्तर से लौटता तो मेज पर पड़े प्रूफ मेरा इंतज़ार करते मिलते। ज्योति चाय का गिलास रख जाती। आगे-पीछे कोई घरेलू बात छेड़ती तो मेरी नज़रें गलतियाँ मार्क करने पर लगी रहतीं। मैं 'हूँ-हाँ', 'अच्छा' या 'जैसे तुम्हें अच्छा लगता हो या जैसा तू अच्छा समझती हो, कर ले' कहकर पीछा छुड़ाने की कोशिश करता। मेरी एकाग्रता तो प्रूफ पढ़ने पर केंद्रित रहती। यदि कहीं 'सी' कॉपी रह जाती तो अगले दिन चिट पर लिखा हुआ आ जाता, "बग्गा जी, थोड़ा ध्यान दो... नहीं तो आगे से मैं प्रूफ नहीं भेजूँगा।"

उन दिनों विलाबल आठवीं में पढ़ता था जब वह समरी याद करते करते मेरे पास आया था। वह कुछ कठिन वाक्यों के अर्थ पूछने लगा। मैंने बता दिए। वह फिर आया। जो उसने पूछा, मैंने बता दिया। तीसरी बार आया तो मैं चीख़ उठा, "मुझे काम भी करने देगा कि नहीं?" पता नहीं मेरी चीख़ कितनी भयानक थी कि ज्योति दौड़ी दौड़ी आई। हत्प्रभ खड़ी हम दोनों के चेहरों की ओर देखने लगी। उसने मुझसे कुछ नहीं पूछा। विलाबल को बाँह से पकड़कर रसोई में ले गई। उसे समझाया, "इन्हें काम करने दे। काम खत्म होगा तो समय से सो पाएँगे। सयाना बना करते हैं।"

वह सयाना बन गया। उसने अपनी किताबें बैठक में ले जाकर रख दीं। वहीं सोने लगा। वह अपनी मम्मी के पास आ बैठता। मेरे पास न आता। मेरे पास इतनी फुर्सत न होती कि मैं उसके पास जाकर बैठूँ या उसे अपने पास बुला लूँ। प्रूफ खत्म होते तो अनुवाद का काम आ जाता। रिवीज़न के लिए किताबें आ जातीं।

यह बात भी नहीं थी कि मैं उसे अपने पास बिठाना नहीं चाहता था। मेरी तो यही इच्छा थी कि वह पढ़े। अधिक नहीं तो किसी दफ़्तर में ऑडीटर ही लग जाए। मैं स्वयं और ज्यादा तंग हो लेता। पर उसे तंग न रहने देता। उसी के लिए तो इतनी मेहनत कर रहा था। अंदाजा लगाता कि वह पढ़ रहा है या सो गया। अगर पढ़ रहा होता तो मैं उसे चाय के लिए पूछता। उसे भी मेरी तरह चाय की तलब लगती। मैं कपों में चाय डालकर उसके पास जा बैठता। वह अपनी नज़रें किताब पर केंद्रित किए रहता। जितना भर मैं पूछता, बस उतना ही वह जवाब देता।

दफ्तर जाते समय कई बार मेरा ध्यान उसकी तरफ चला जाता। मुझे लगता कि मेरे और उसके बीच दूरी बढ़ रही है। यह अच्छी बात नहीं थी। उसी दिन मैं बाज़ार जाता। उसके लिए कोई न कोई गिफ्ट खरीद लाता। बच्चा था, वह खुश हो जाता। मुझसे कसकर लिपट जाता। कहता, "डैडी जी, तुम कितने अच्छे हो।"

मैं शीघ्र ही अच्छे से बुरा बन गया था। उसकी मैट्रिक में सेकेंड डिवीज़न आई थी। मैंने इसकी वजह पूछी तो उसका खीझ भरा जवाब था, "आपको क्या? मेरे लिए आपके पास समय ही कहाँ होता है।" मेरे मन में आया कि खींचकर उसके मुँह पर थप्पड़ दे मारूँ। खुद अक्ल आ जाएगी। पर मैंने अपने आप को सँभाल लिया था। बच्चा था। धीरे-धीरे अक्ल-दाढ़ आएगी। वह अपने कमरे की ओर दौड़ गया था। मुझे उसकी इस खीझ का पता था। उसे इस बात का गुस्सा था कि मैंने उसके रिजल्ट का पता पहले क्यों नहीं लगाया जैसे कि दूसरों के माता-पिता ने लगाया था। यदि डिवीज़न नहीं बनती थी तो उसे फेल करवाया जा सकता था। वह अगले वर्ष अच्छे नंबर ले आता।

वह यह जानता था कि मेरे प्रकाशक के शिक्षा बोर्ड वालों से अच्छे संबंध हैं। इतना काम आसानी से करवाया जा सकता था। मुझे अपनी गलती पर पछतावा हुआ था। मैंने उसके कमरे में जाकर कहा था, "कोई नहीं बेटा! आगे डटकर मेहनत करना।"

उसने सेकेंड डिवीज़न में ग्रेज्यूएशन की। नौकरी के लिए अप्लाई करता रहा। एक साल। दो साल। तीसरे साल मैंने उसे अपने प्रोविडेंट फंड में से पैसे निकलवाकर बर्तनों की दुकान खुलवा दी। उस समय मैं जल्दबाजी कर गया था। मुझसे उसका खाली बैठना सहन नहीं हुआ था। मैंने यह भी चाहा था कि और कुछ नहीं तो वह प्रूफ रीडिंग ही सीख ले। रोटी-पानी योग्य हो जाएगा। पर उसकी नाक तले यह काम न आया। एकाध बार ज़ोर डालकर कहा तो उसका जवाब था, "इस काम से तो कुएँ में छलाँग लगानी अच्छी।" दुकान चल पड़ी। दफ़्तर से लौटता हुआ मैं उसकी ओर चक्कर लगाता। खड़े-खड़े ही लौटने की करता। उस समय मेरी यह कोशिश होती थी कि जल्द से जल्द घर पहुँचा जाए और दो घड़ी सुस्ता लिया जाए। यही समय मेरे आराम का होता था। इसी समय उसकी दुकान पर ग्राहक आते थे। सात बजते तो शशी प्रूफों का बंडल मेरी ओर उछालता हुआ कहता, "बग्गा साहिब, लो पकड़ो। जितने पढ़े गए ठीक। बाकी कल तक निपटा देना। बहुत अर्जेंट हैं। देखना, घुग्गी न मारना। आजकल सख़्ती चल रही है।" उस समय मैं सब कुछ भूल जाता। मुझे रोटी खाना तक याद न रहता। मेरी यही कोशिश रहती कि सोने से पूर्व अधिक से अधिक फर्मे पढ़ लिए जाएँ। ज्योति खाने के लिए पुकारती रहती। मैं उसे यहीं ले आने के लिए ज़ोर देता। वह चाहती थी कि हम बाप-बेटा एकसाथ बैठकर रोटी खाएँ। मैंने उसके इस सुझाव पर कभी ध्यान नहीं दिया। वह अपनी बात मुझसे जबरन न मनवाती क्योंकि मेरे इस काम से वह थोड़ा-बहुत खुला खर्च कर लेती थी। दिसंबर-जनवरी में काम कम हो जाता। वह मुझे याद करवाने के लहजे में कहती, "तुम जसपाल को टेलीफोन करना। अब तो नया सीज़न शुरू हो गया।"

विलाबल दुकान बंद करके सीधा घर आता। मेरे पास बैठता। बताता कि आज कितनी बिक्री हुई। कितने पैसे बचे। उसकी पहली कोशिश यह रहती कि किराये के पैसे पूरे हो जाएँ। जल्दी ही किराये के पैसे भी पूरा होना बंद हो गए। दिन-त्यौहार पर बिक्री अच्छी हो जाती। बाद में फिर मंदी का दौर शुरू हो जाता। इसी दौरान उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने लगा। वह मेरा सामना करने में भी गुरेज करने लगा। मैं स्वयं बुला लूँ तो ठीक। नहीं तो वह मेरे कमरे की ओर मुँह न करता।

किराया, बिजली का बिल और अन्य खर्चे जब दुकान में से निकलने कठिन हो गए तो उसने अपनी मम्मी से कहा, "अब मुझे दुकान बंद कर देने में ही फ़ायदा दिखाई देता है।"

"अभी तो इसे खोले तीन साल भी नहीं हुए।" ज्योति ने उसे समझाया, "दुकान से तेरा भविष्य जुड़ा है।"

"मम्मी जी, मुझे पता है। यह दुकान नहीं चलने वाली। आप पूछो, क्यों? बाजार में घुसते ही बर्तनों की दो और दुकानें खुल गई हैं। उनमें सामान की बहुत सारी वैराइटीज़ हैं। मेरी दुकान में कम से कम चालीस-पचास हज़ार का माल पड़ना चाहिए। बताओ, इतने पैसे मुझे कौन दे सकता है?"

"तू थोड़ा थोड़ा करके माल डाले जा।"

"हफ्ते में मैं दो बार मार्किट जाता हूँ। पुराना पीतल बेचने, नया लेने। इससे कुछ नहीं बनता। अधिक फ़र्क़ नहीं पड़ता। आजकल काम पैसों से चला करते हैं। खुले पैसे हों, दुकान भरी भरी लगे। ग्राहक खुद दौड़े आते हैं।"

दीवाली के बाद उसने दुकान को ताला लगा दिया।

विलाबल ने कैसेट बदली। वह जाग रहा था। ज्योति भी उठकर बैठ गई।

"एक बज गया, इसे नींद नहीं आती?" मैंने चिंतित होकर पूछा।

"पता नहीं, क्या-क्या सोचता रहता है।"

"इस उम्र में तो नींद हल्ला करके आनी चाहिए।"

"हूँ...।"

जब वह 'हूँ' कहती थी तो उससे अपनी बात जारी रखना कठिन हो जाता था। उसे कुछ देर चुप रहना पड़ता था। मैं उसकी चुप को पढ़ने लगा।

"तुम विलाबल को अपने वाले डॉक्टर को दिखाकर देख लो।" कहकर उसने नज़रें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं।

"डॉक्टर भी अच्छा कहेगा, पहले बाप दवाई खा रहा था, अब बेटे की बारी आ गई।" मुझे हँसी आ गई।

ज्योति को मेरा हँसना अच्छा न लगा। उसने मेरी तरफ़ देखा, मानो कह रही हो - जनाब, इसमें हँसने वाली कौन सी बात है।

उसने कहा, "आपको उसे संग लेकर जाना चाहिए। आपको भी फ़ायदा हुआ है न।"

मैंने उसकी बात मान ली। कहा, "तू चाय बनाकर ला। विलाबल के लिए भी बना लेना।"

वह तुरंत उठी। चाय बनाने चली गई। मेरा ध्यान विलाबल की ओर चला गया। एक ही लड़का है। लड़कियाँ अपने अपने घरों में सुखी बस रही हैं। बस मुझे इसकी चिंता रहती है। मेरे रिटायर होने से पहले पहले यह सैट हो जाए। और फिर विवाह।

ज्योति ने चाय के कप लाकर मेरे पास रख दिए। वह रात में चाय नहीं पीती। मेरी भी बहुत गंदी आदत है। चाय मिल जाए तो दस मिनट बाद नींद आ जाती है।

मैंने दोनों कप उठाकर विलाबल के कमरे की ओर जाते जाते एक और फ़ैसला कर लिया था। यह उसे बताऊँगा। वह खुश हो जाएगा। मैं अपने प्रोविडेंट फंड में से अंतिम पचास हज़ार रुपये निकलवा कर उसे दूँगा ताकि वह अपने कॉफी हाउस की और अधिक गैटअप बढ़ा सके।

मैंने पैर से उसके कमरे का दरवाजा खोला। उसने ठोड़ी तक रजाई ले रखी थी। उसके दाईं तरफ फाड़े गए कागजों की ढेरी पड़ी थी। उसने दुकान का लेखा-जोखा किया होगा।

मेरी ओर देखकर उसने दीवार से पीठ लगा ली। बोला, "मेरा कप नीचे रख दो। आप अभी तक जाग रहे थे? सॉरी। मुझे ख़याल ही नहीं रहा था। मुझे इतनी ऊँची आवाज़ में कैसेट नहीं चलानी चाहिए थी। सॉरी, डैडी जी, रीयली सॉरी।"

वह उठे, इससे पहले मैंने ही आवाज़ कम कर दी। अपना कप सँभाल कर बैड पर बैठने के लिए कंबल को एक तरफ किया। उसने उतावली में कहा, "नहीं, आप अपने कमरे में चले जाओ। प्लीज़, लीव मी अलोन। आप तो सो सकते हो, जाओ, सो जाओ...।"

मेरे पास अपने कमरे में वापस लौट आने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा था।